विश्व शांति का पथ

विश्व शांति का पथ

विश्व न्याय मंदिर
का
एक वक्तव्य

बहाई पब्लिशिंग ट्रस्ट
पोस्ट बाक्स नं. 19
नई दिल्ली-110001

A Hindi Translation of
"The Promise of World Peace"

A Statement by
The Universal House of Justice

तृतीय संशोधित संस्करण १९९२

ISBN ८१-८५०९१-४९-८

प्रस्तावना

विश्व शांति का पथ

बहाई धर्म की सर्वोच्च प्रशासनिक संस्था विश्व न्याय मंदिर द्वारा विश्व के लोगों के नाम जारी किये गये इस महत्वपूर्ण वक्तव्य का सार कोई सौ साल पहले बहाउल्लाह के धर्म-प्रकटीकरण में अंकित किया गया था। मुख्य रूप से २४ अक्तूबर सन् १९८५ अथवा उसके बाद इसे राज्याध्यक्षों को भेंट किया गया।

इस वक्तव्य के अधिकांश विषय बहाउल्लाह द्वारा तत्कालीन प्रमुख राजाओं और धार्मिक नेताओं को लिखे गये पत्रों में सन्निहित हैं। उन्होंने घोषणा की वह समय निश्चित रूप से आयेगा जब पृथ्वी के शासकगण अवश्य एकत्रित होंगे और "ऐसे रास्तों और साधनों पर विचार करेंगे जो मानवजाति के बीच विश्व की महान शांति की आधारभूमि तैयार करेंगे।"

इस आदेश की अवहेलना के दुष्परिणाम मानवजाति द्वारा अनुभूत इतिहास के सर्वाधिक आक्रामक, विनाशकारी और वस्तुतः विपत्तिजनक काल-पृष्ठ पर अंकित हैं।

विश्वभर में १५२ निर्वाचित राष्ट्रीय बहाई संस्थान और हजारों स्थानीय निकायों के प्रयत्नों से हर क्षेत्र में यह वक्तव्य पदाधिकारियों और गणमान्य व्यक्तियों को भेंट किया जा रहा है। उम्मीद है कि शांति तथा एकता की भावना को बढ़ावा देने की दिशा में तथा असंख्य लोगों की इच्छा को पूरा करने में यह प्रभावकारी भूमिका निभाएगा।

मूल वक्तव्य में जो थोड़ा सम्पादकीय परिवर्तन किया गया है वह है प्रस्तावना का यह पृष्ठ तथा बीच में जोड़े गये शीर्षक और उप-शीर्षक।

अक्तूबर १९८५

परिचय

विश्व के राष्ट्रों को,

वह महान शांति, जिसकी ओर सद्‌भावनासंपन्न लोगों ने शताब्दियों से अपने हृदय की आशा को केन्द्रित किया है, जिसकी परिकल्पना अगणित पीढ़ियों के द्रष्टाओं और कवियों ने की है, और जिसका वचन युग-युग में मानवजाति के पवित्र धर्मग्रंथों ने दिया था, अब, अन्ततः, राष्ट्रों की पहुंच के भीतर दिखाई देती है। इतिहास में पहली बार प्रत्येक व्यक्ति के लिये यह संभव हो सका है कि वह विविध राष्ट्रों और जनसमूहों वाला इस समूची पृथ्वी को एकता की दृष्टि से देख सके। विश्व शांति न केवल सम्भव है, अपितु अवश्यम्भावी है। इस धरती के विकास का यह अगला चरण है। एक महान विचारक के शब्दों में "मानवजाति का सार्वभौमीकरण"।

क्या शांति की मंज़िल तक हम तभी पहुंच पायेंगे, जब मानवजाति द्वारा व्यवहार और आचरण के पुराने ढर्रे और पुराने तौर तरीकों पर हठपूर्वक अड़े रहने के कारण हम अकल्पनीय यातनायें भोग चुके होंगे ? या फिर आपसी परामर्श के परिणामस्वरूप स्वेच्छापूर्वक हम शांति को अपनायें ? यह एक ऐसा विकल्प है जो इस धरती के सभी निवासियों के सामने खुला है। इस नाजुक मोड़ पर जबकि राष्ट्रों के सामने खड़ी अनेक असाध्य समस्यायें एक असामान्य रूप लेकर पूरे विश्व की चिंता बन गईं हैं, संघर्ष और अव्यवस्था के ज्वार को रोकने में असफलता, एक घोर ग़ैरज़िम्मेदारी का काम होगा।

शांति के अनुकूल लक्षण

कुछ अनुकूल लक्षण भी सामने आ रहे हैं। उनमें से एक है, एक विश्व-व्यवस्था की ओर बढ़ते हुए कदमों का निरंतर अधिक सशक्त होते जाना। इस दिशा में पहली शुरूआत लीग ऑफ़ नेशन्स के निर्माण के द्वारा इस शताब्दी के प्रारंभिक काल में हुई थी और लीग ऑफ़ नेशन्स का

उत्तराधिकारी है संयुक्त राष्ट्र संघ जो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक व्यापक आधार पर खड़ा है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से संसार के अधिकांश राष्ट्रों ने स्वतंत्रता पा ली है। यह राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया के पूरे होने का संकेत है।[१] एक दूसरे से संबंधित मामलों में इन नवोदित राष्ट्रों की पुराने राष्ट्रों से संलग्नता। अब तक जो जातियां अथवा राष्ट्र अलग थलग और एक दूसरे के प्रति विरोधीभाव रखते थे, वे वैज्ञानिक, शैक्षणिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय कार्यकलापों के माध्यम से एक दूसरे से सहयोग करने लगे हैं। हाल के दशकों में अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावादी संगठनों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। युद्धों को समाप्त करने की पुकार उठाने वाले, महिलाओं और युवाओं के आंदोलनों का प्रसार हो रहा है। व्यक्तिगत संपर्क और संवाद द्वारा आपसी समझ बढ़ाने के आकांक्षी साधारण जनों के निरंतर बढ़ते हुए ताने बाने का स्वतः ही विकास हो रहा है।

इस असाधारण रूप से सौभाग्यशाली शताब्दी में होने वाली वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति, इस धरती पर सामाजिक विकास के क्षेत्र में एक भारी उन्नति का पूर्वाभास देती है और उन साधनों की ओर इशारा करती है जिनके द्वारा मानवजाति की व्यावहारिक समस्यायें सुलझाई जा सकतीं हैं। वस्तुतः वे एक संयुक्त संसार के जटिल जीवन प्रशासन के साधन प्रस्तुत करते हैं। फिर भी मार्ग में बाधायें बनी हुई हैं। शंकायें, गलत धारणायें, पूर्वाग्रह, संदेह और संकीर्ण निहित स्वार्थ राष्ट्रों और जातियों के आपसी संबंधों में अड़चनें बने हुए हैं।

इस उपयुक्त अवसर पर एक आध्यात्मिक और नैतिक दायित्व से प्रेरित होकर हम आपका ध्यान उन गहन अन्तर्दृष्टि संपन्न तथ्यों की ओर आकर्षित कर रहे हैं, जो बहाई धर्म के संस्थापक बहाउल्लाह ने एक सदी से भी पहले मानवजाति के शासनकर्ताओं तक प्रेषित किये थे। उनके धर्म के न्यासधारी होने के कारण हम इसे अपना कर्त्तव्य समझते हैं

---

१ विश्व इतिहास के क्रमिक विकास में जनपद, और नगर राज्य से प्रारंभ होकर राष्ट्र-निर्माण, विश्व एकता से पहले की अंतिम सीढ़ी है।

संघर्ष और युद्ध का पिशाच

बहाउल्लाह ने लिखा था "शोक का विषय है कि निराशा के झंझावात प्रत्येक दिशा से चल रहे हैं और मानवजाति को विभाजित तथा आहत करने वाले झगड़े दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं। भविष्य में होने वाली उथल-पुथल और संकट के चिन्ह अब पहचाने जा सकते हैं, क्योंकि वर्तमान व्यवस्था अत्यधिक दयनीय रूप से दोषपूर्ण है।" इस भविष्यद्रष्टा के इस निष्कर्ष का पर्याप्त प्रमाण मानवजाति के सामान्य अनुभव से मिल जाता है। वर्तमान व्यवस्था की कमियां इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ के रूप में संगठित संसार के प्रभुसत्तासंपन्न राष्ट्र, युद्ध की मंडराती प्रेतछाया को अभी तक दूर नहीं हटा सके हैं, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के ढह जाने का संकट सामने खड़ा है, अराजकता और आतंकवाद फैलते जा रहे हैं और इनके तथा अन्य व्याधियों के कारण करोड़ों लोगों के भीषण कष्ट भी निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। दरअसल आक्रामकता और संघर्ष हमारी सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक व्यवस्थाओं का इस हद तक मूल स्वभाव बन गये हैं कि बहुत से लोग इस दृष्टिकोण के आगे घुटने टेक चुके हैं – कि ऐसा व्यवहार मानव स्वभाव का एक स्वाभाविक अंग है और इसलिये इसे दूर नहीं किया जा सकता।

इस दृष्टिकोण के गहरे जड़ जमा लेने के कारण मानवजाति के कार्यकलापों में एक ऐसा विरोध उत्पन्न हो गया है जो उसे जड़ और गतिहीन बना रहा है। एक ओर तो सभी राष्ट्रों के लोग न केवल शांति और समन्वय के लिये अपनी स्वीकृति बल्कि अपनी प्रबल लालसा का ढिंढोरा पीटते हैं, और उनकी रोजमर्रा की जिन्दगी पर मंडराती भय और शंकाओं की इस यंत्रणा का अंत चाहते हैं। दूसरी ओर इस सिद्धान्त को भी बिना सोचे समझे स्वीकार कर लेते हैं कि मनुष्य एक इतना स्वार्थी और आक्रामक जीव है कि उसके इन दुर्गुणों को दूर नहीं किया जा सकता और इसीलिए वह एक ऐसी समाज-व्यवस्था के निर्माण के अयोग्य है जो एक साथ ही प्रगतिशील तथा शांतिमय हो, गतिशील और सामंजस्यपूर्ण हो, एक ऐसी व्यवस्था जिसमें व्यक्ति की सृजनात्मकता और व्यक्तिगत पहल के लिए उन्मुक्त अवसर हों, लेकिन वह सहयोग और आपसी आदान प्रदान पर भी आधारित हो।

जैसे जैसे शांति की अधिक से अधिक आवश्यकता महसूस हो रही है। यह आधारभूत विरोध जो शांति के सपने के साकार होने में बाधक है, उन धारणाओं पर पुनर्विचार की मांग करता है जिन पर आजका सामान्य दृष्टिकोण आधारित है। अनासक्त भाव से तथ्यों की परीक्षा से यह प्रमाणित हो जाता है कि ऐसा आचरण मनुष्य के सच्चे स्वरूप को प्रकट करने की बात तो दूर, मानव-चेतना के एक विकृत रूप को सामने रखता है। इस विचार से संतुष्ट होने पर सभी मनुष्य ऐसी रचनात्मक सामाजिक शक्तियों को गतिमान कर सकेंगे जो मनुष्य के मूल स्वभाव के अनुकूल होंगी और युद्ध तथा विरोध को बढ़ावा देने के स्थान पर सामंजस्य और सहयोग को प्रोत्साहन देंगी।

एक ऐसे मार्ग को चुनने का अर्थ मानवता के अतीत को नकारना नहीं, बल्कि उसको समझना है। बहाई धर्म वर्तमान विश्व में व्याप्त अव्यवस्था और मानव क्रियाकलापों में रची-बसी संकटमय स्थिति को उस जीवन्त प्रक्रिया का एक स्वाभाविक चरण मानता है जो अन्ततः और अबाध्यरूप से मानवजाति को एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था तक ले जाएगी जिसकी अंतिम सीमायें वही होंगी जो इस धरती की हैं। मानवजाति एक जैविक इकाई के रूप में विकास के उन सभी चरणों से गुजरी है जो मनुष्य के शैशव और बाल्यकाल के समान्तर हैं और अब इस विकास की परिणति इसके उथल पुथल भरे किशोरकाल में हो रही है जो स्वयं चिर प्रतीक्षित युग की ओर बढ़ रहा है।

इसे बेझिझक स्वीकार कर लेना कि पूर्वाग्रह, युद्ध और शोषण उस विराट ऐतिहासिक प्रक्रिया में अपरिपक्वता के चरण थे और मानवजाति आज जिस उथल पुथल की स्थिति से गुजर रही है वह उसके सामूहिक रूप से वयस्कता तक पहुंचने का चिन्ह है, निराशा का कोई कारण नहीं है बल्कि एक शांतिपूर्ण विश्व के निर्माण के महत्तर दायित्व को निभाने की एक जरूरी शर्त है। ऐसा महत्तर कार्य संभव है, इसके लिये आवश्यक रचनात्मक शक्तियों का अस्तित्व है, और एक एकीकरण करने वाले सामाजिक ढांचे का निर्माण किया जा सकता है – यही वह विषय है जिसका हम निवेदन करते हैं कि आप परीक्षण करें।

जो कुछ भी पीड़ा और उथल पुथल निकट भविष्य में मानवता को भोगने हैं, तात्कालिक परिस्थितियां चाहे कितनी ही अंधकारमय हों, बहाई समुदाय का विश्वास है कि मानवजाति इसके अंतिम परिणाम के प्रति पूर्णतया आश्वस्त रहते हुए, इस महान परीक्षा का सामना कर सकती है। सभ्यता के अंत की ओर इंगित करने की बात तो दूर, वे उथल पुथल भरे परिवर्तन जिनकी ओर मानवता अधिकाधिक तीव्रगति से बढ़ने को बाध्य है, "मानव में अन्तर्निहित संभावनाओं को उन्मुक्त करने में" और "इस धरती पर इसकी नियति की संपूर्णता को, उसके यथार्थ की नैसर्गिकता को प्रकट करने में सहायक होंगी"।

* * *

धर्म की केन्द्रीय भूमिका

धर्म सामाजिक व्यवस्था के साधन के रूप में

वे इश्वरप्रदत्त गुण जो मानवजाति को अन्य सभी जीवरूपों से अलग करते हैं, उस एक शब्द में साररूप में निहित हैं जिसे मानवचेतना कहा जाता है। मस्तिष्क इसका एक सारभूत गुण है। इन्हीं नैसर्गिक गुणों ने मानवजाति को सभ्यताओं के निर्माण और भौतिक समृद्धि की क्षमता दी है। लेकिन केवल इन्हीं उपलब्धियों से मानवचेतना संतुष्ट नहीं हो सकी है। इसका रहस्यमय स्वरूप इसे एक सर्वातीत भाव की ओर, एक अदृश्य लोक की ओर बढ़ने को, उस अंतिम यथार्थ की ओर सभी सारतत्वों के उस सारतत्त्व की ओर जिसे ईश्वर कहा जाता है, पहुंचने की प्रवृत्ति देता है। एक के बाद एक आने वाली आध्यात्मिक प्रतिभाओं ने जो धर्म मानवजाति को प्रदान किये थे, वे मानवता और उस अंतिम यथार्थ के बीच प्राथमिक संबंध-सूत्र रहे हैं। और उन्होंने मानवजाति की क्षमता को इस तरह से अनुप्राणित और सुसंस्कृत किया है कि वह सामाजिक प्रगति के साथ साथ आध्यात्मिक उत्कर्ष की उपलब्धि भी कर सके।

मानव क्रियाकलापों को व्यवस्थित करने के, विश्वशांति को प्राप्त करने के कोई भी गंभीर प्रयास धर्म को अनदेखा नहीं कर सकता। मानवजाति का धर्म के प्रति दृष्टिकोण और आचरण अधिकांश में इतिहास का विषय है। एक प्रमुख इतिहासकार ने धर्म को "मानव स्वभाव का एक गुण" कहा है। इस गुण की विकृति ने ही समाज में होने वाली अव्यवस्था तथा व्यक्तियों के बीच होने वाले संघर्षों को जन्म दिया है, इसे इन्कार नहीं किया जा सकता है। लेकिन कोई भी निष्पक्ष विचारों वाला पर्यवेक्षक धर्म द्वारा सभ्यता पर पड़ने वाले प्रबल प्रभावों से भी इन्कार नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त, कानूनों और नैतिकता पर पड़ने वाले इसके सीधे प्रभाव द्वारा सामाजिक व्यवस्था के लिए इसकी अनिवार्यता, स्वतः प्रमाणित है।

धर्म की सामाजिक शक्ति के बारे में बहाउल्लाह ने कहा है: "इस संसार में व्यवस्था की स्थापना और इसमें जो भी रहते हैं उनकी शांतिपूर्ण संतुष्टि के लिए धर्म सभी साधनों में सबसे महान है।" धर्म के सच्चे स्वरूप के छिप जाने या भ्रष्ट होने के विषय में उन्होंने लिखा है – "यदि धर्म का दीपक अंधकार में छिप जाये तो अव्यवस्था उत्पन्न होगी, और औचित्य की, न्याय की और शांति की ज्योति प्रकाश देना बंद कर देगी।" ऐसे परिणामों को गिनाते हुए बहाई पवित्र ग्रंथों में यह इंगित किया गया है कि "मानव-स्वभाव की विकृति, मानवीय आचरण का पतन, मानवीय संस्थाओं की भ्रष्टता और विघटन, ऐसी परिस्थितियों में स्वयं को अपने सबसे निकृष्ट रूपों में प्रकट करते हैं। मानव चरित्र का अधःपतन होता है, आत्मविश्वास विचलित हो जाता है। शिष्टता और लज्जा की भावना तिरोहित हो जाती है। मानव अन्तःकरण की आवाज को कुचल दिया जाता है। कर्तव्य, सुदृढ़ता, पारस्परिक आदान-प्रदान और निष्ठा की धारणायें विकृत हो जाती हैं और शांति, आनंद और आशा की मूल संवेदना ही धीरे धीरे समाप्त हो जाती है।"

धर्मों की मौलिक एकता

अतः यदि मानवता एक ऐसे बिन्दु तक आ पहुंचे जब विरोध और संघर्ष ने उसे जड़ और गतिहीन कर दिया हो तो गलतफहमियों और भ्रम के उस मूलस्रोत को खोजने के लिए जो धर्म के नाम पर उसे आहत कर रहा है, उसे स्वयं अपनी ओर, अपनी उपेक्षा की ओर, और उन तीखी पुकारों की ओर ध्यान देना चाहिए। और जो लोग अंधेपन और स्वार्थ के साथ अपनी विशिष्ट कट्टरपंथी धारणाओं पर अड़े हुए हैं, जिन्होंने अपने अनुयायियों पर ईश्वरीय संदेशवाहकों की वाणी की परस्पर विरोधी और गलत धारणायें थोपी हैं, वे भी इस भ्रम और व्यवस्था के लिये अधिक जिम्मेदार हैं – एक ऐसा भ्रम और एक ऐसी अव्यवस्था जिन्हें धर्म और तर्क, विज्ञान और धर्म के बीच नकली दीवारें खड़ी करके और अधिक बढ़ा दिया गया है। क्योंकि महान धर्मसंस्थापकों की वास्तविक वाणी के एक न्यायपूर्ण परीक्षण से और उस सामाजिक परिवेश पर दृष्टि डालने से जिसके बीच उन्हें अपने ईश्वरीय उद्देश्य को निभाने के लिए बाध्य होना पड़ा था, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विभिन्न मानवीय धर्मसमुदायों को विश्रृंखलित कर देने वाले विवादों और पूर्वाग्रहों का कोई भी आधार नहीं है।

यह शिक्षा कि हमें दूसरों से भी वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा व्यवहार हम स्वयं अपने प्रति चाहें, ऐसा नैतिक सिद्धान्त है जिसे सभी महान धर्मों में अनेक रूपों में दोहराया गया है। यह सिद्धान्त हमारे इस बाद के कथन को दो विशिष्ट संदर्भों में और अधिक बल देता है। यह इन धर्मों में व्याप्त उनके नैतिक रवैये, उनके शांति को प्रोत्साहन देने वाले पक्ष का सार रूप प्रस्तुत करता है, चाहे वे धर्म किसी भी युग और किसी भी स्थान में उदभूत हुए हों। यह एकता के उस पहलू की ओर भी संकेत करता है जो उनकी सारभूत अच्छाई है, एक ऐसी अच्छाई जिसे अपने असंबद्ध ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने में मानवजाति असफल रही है।

यदि मानवजाति ने अपने सामूहिक बाल्यकाल के शिक्षकों को उनकी वास्तविक विशिष्टता के परिप्रेक्ष्य में, एक ही सभ्यता के निर्माण की प्रक्रिया के माध्यमों के रूप में देखा होता, तो यह अवश्य ही उनके उत्तरोत्तर आने वाले ईश्वरीय प्रयोजनों के समग्र प्रभावों से इतने महान रूप से लाभान्वित होती जिसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। लेकिन शोक, कि यह ऐसा करने में असमर्थ रही।

कई देशों में धर्मान्ध धार्मिक उत्साह का फिर से उमड़ पड़ना, बुझने से पहले दिये की लौ के भड़कने के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा जा सकता। इस धर्मान्धता की लहर के साथ हिंसा और विघटनकारी घटनाओं का आना इनके आध्यात्मिक दिवालियापन की गवाही देता है। निश्चय ही धार्मिक धर्मान्धता के इस वर्तमान उत्थान का एक सबसे विचित्र और सबसे दुखःजनक पहलू यह है कि इसने, जिस धर्म में भी यह प्रकट हुआ है, उस धर्मविशेष के मानवीय एकता से संबंधित आध्यात्मिक मूल्यों को ही खोखला नहीं कर दिया है, बल्कि जिस धर्म की यह धर्मान्धता सेवा करना चाहती है उस धर्म के द्वारा प्राप्त अनूठी नैतिक विजयों को भी इसने निःशेष कर दिया है।

कहाँ है वह "नई दुनिया" ?

मानवजाति के इतिहास में धर्म चाहे जितनी ही महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उभरा हो और उग्रवादी धार्मिक कट्टरता का वर्तमान पुनरूत्थान कितना ही नाटकीय हो, धर्म और धार्मिक संस्थाओं को पिछले कुछ दशकों से अधिकाधिक

संख्या में लोगों ने आधुनिक विश्व की प्रमुख समस्याओं के संदर्भ में अप्रासंगिक समझा है। धर्म के स्थान पर लोग या तो भौतिकवादी संतुष्टि की ओर मुड़े हैं या उन मानवनिर्मित वादों का अनुसरण करने में लगे रहे हैं जो उन बुराइयों को दूर करने के लिए रचे गये हैं जिनके कारण ऊपरी तौर पर समाज संत्रस्त दिखाई पड़ता है। इनमें अधिकांश वादों की प्रवृत्ति मानवजाति की एकता को बढ़ावा देने और विभिन्न राष्ट्रों के बीच सहमति और मेलमिलाप की अभिवृद्धि करने के बजाय या तो राजतंत्र को ही ईश्वर की जगह बिठाने अथवा सारी मानवता को एक राष्ट्र, नस्ल या धर्म के अधीन करने अथवा सभी प्रकार के विचारविमर्श और विचारों के आदान-प्रदान के दमन का प्रयास करने तथा करोड़ों भूखे मरते लोगों को एक ऐसी बाजार व्यवस्था की दया पर छोड़ देने की ओर है जो स्पष्टतया ही बहुसंख्यक मानवता की दुर्दशा को और अधिक बढ़ा रही है जबकि कुछ थोड़े से वर्गों को समृद्धि की ऐसी स्थिति में जीवन बिताने की सामर्थ्य दे रही है जिसकी कल्पना भी हमारे पूर्वजों ने शायद ही की हो।

कितना दुःखद है इन स्थानापन्न धर्मों का लेखा-जोखा जिन्हें हमारे युग के बुद्धिमान लोगों ने दिया है। जिन विशाल जनसमूहों को इन वादों की वेदिकाओं पर आराधना करने की शिक्षा दी गई थी, आज उनका पूर्णतया भ्रमभंग हो चुका है। इन वादों और सिद्धान्तों ने जो फल उत्पन्न किये हैं, वे हैं अनेक ऐसी सामाजिक और आर्थिक बुराइयां जो बीसवीं सदी के इन अंतिम वर्षों में संसार के प्रत्येक क्षेत्र को संत्रस्त कर रही हैं। इन सभी ऊपरी व्याधियों के मूल में है एक आध्यात्मिक क्षति; और यह क्षति प्रतिबिंबित होती है सभी राष्ट्रों के जनसमूहों पर छाई हुई निष्क्रियता की भावना में। इसने करोड़ों उपेक्षित और पीड़ित लोगों के हृदयों में प्रकाशित आशा की सभी किरणों को बुझा डाला है।

अब वह समय आ गया है जब भौतिकवादी सिद्धान्तों का उपदेश देने वाले लोगों को चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के, पूंजीवादी हों या समाजवादी, चाहिये कि उस नैतिक नेतृत्व का हिसाब पेश करें, जो अपनी धारणा के अनुसार उन्होंने अब तक संचालित किया है। कहां है वह नई दुनिया जिसका वायदा इन वादों ने किया था ? कहां है सांस्कृतिक उपलब्धि के वे नये आयाम

जो इस या उस राष्ट्र या नस्ल के द्वारा या विशेष वर्गों के द्वारा शक्ति और समृद्धि हथियाकर उत्पन्न हुई है ? क्यों संसार के लोगों का विशाल बहुमत अधिक से अधिक भूख और दुर्दशा के दलदल में फंसता जा रहा है ? जबकि इतनी धनसंपत्ति आज मानवजाति के भाग्य के निर्णायकों के हाथों में है, जिसकी कल्पना फैरो (मिस्र के सम्राट) सीजरों या उन्नीसवीं शताब्दी की साम्राज्यवादी शक्तियों ने भी न की होगी ।

विशेषरूप से इन सभी वादों में भौतिक उपलब्धियों की जो महिमा गाई गई है, वही इन सब वादों की जननी भी है और उनकी एक सामान्य विशेषता भी । वही इस मिथ्या भावना को पोषित करती है कि मनुष्य इतना स्वार्थी और आक्रामक स्वभाव का है कि उसके स्वभाव को बदला नहीं जा सकता । यहीं से उस आधारभूमि को निष्कंटक बनाना है जहां से हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए एक नये विश्व का निर्माण शुरू होगा ।

अनुभव के निष्कर्ष के रूप में यह स्पष्ट हो जाता है कि भौतिकवादी आदर्श मनुष्यजाति को संतुष्टि देने में असफल रहे हैं । और इसी कारण से यह ईमानदारी से स्वीकार किया जाना चाहिए कि अब इस धरती की यातनामयी समस्याओं के हल के लिए एक नया प्रयास किया जाना आवश्यक है । आज समाज में व्याप्त असहनीय परिस्थितियां सभी की सामान्य असफलताओं का उद्घोष करती हैं । यह एक ऐसी स्थिति है जो प्रत्येक दिशा से घिरी हुई मानवता को राहत देने के बजाय उस विकट परिस्थितियों के घेरे को और भी अधिक घातक बनाती है । स्पष्ट है कि सामान्य उपचार के लिए तुरंत प्रयास किया जाना आवश्यक है । मूलरूप से यह मामला हमारे रवैये से संबंधित है । क्या मानवता अपने पथभ्रष्ट तौरतरीकों पर चलती रहेगी, घिसी पिटी धारणाओं और अव्यावहारिक मान्यताओं पर अड़ी रहेगी ? या इसके नेतागण अपने अपने वादों पर ध्यान न देते हुए, दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ेंगे और उचित समाधानों की एक साझी खोज के लिए आपस में परामर्श करेंगे ?

जिन्हें मानवजाति के भविष्य की चिन्ता है वे इन शब्दों पर भी कुछ विचार करने का कष्ट करें "यदि लम्बे समय से प्रतिष्ठित आदर्श, और समय की कसौटी पर खरी उतरने वाली संस्थायें, कुछ सामाजिक धारणायें और धार्मिक

फार्मूले सामान्य मानवता का कल्याण करने में अब असमर्थ हो गये हैं, यदि वे अब निरंतर विकसित होती हुई मानवता की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाते, तो उन्हें बुहार कर दकियानूसी और विस्मृत सिद्धान्तों के कबाड़खाने में फेंक दिया जाना चाहिए । एक ऐसी दुनिया में जो परिवर्तन और ह्रास के अपरिवर्तनीय नियम के अधीन है, ये सिद्धान्त ह्रास से मुक्त क्यों रहें और प्रत्येक मानव संस्था से आगे क्यों बढ़ जायें ? क्योंकि वैधानिक मानदंडों और राजनीतिक तथा आर्थिक सिद्धान्तों की रचना, मात्र मानवजाति के हितों की समग्ररूप से रक्षा के लिए हुई है और इसलिए नहीं कि किसी विशिष्ट नियम, विधान या सिद्धान्त की अखंडता को बनायें रखने के लिये सारी मानवता को सूली पर चढ़ा दिया जाये ।"

* * *

विश्व शांति के मुद्दे

युद्ध के मूल कारण

अणुअस्त्रों पर पाबंदी लगाने से, जहरीली गैसों के इस्तेमाल को रोकने से या कीटाणु युद्ध को गैरकानूनी करार देने से लड़ाई के मूल कारण समाप्त नहीं होंगे। किन्तु ऐसे महत्वपूर्ण व्यावहारिक उपाय स्पष्ट रूप से शांति की प्रक्रिया के ही अंग हैं। अपने आप में वे इतने सतवी नहीं हैं कि कोई स्थाई प्रभाव नहीं डाल सकते। लोग इतने चतुर हैं कि वे युद्ध के कोई दूसरे तरीके खोज लेंगे और एक दूसरे के ऊपर आधिपत्य पाने के लिए खुराक, कच्चे माल, आर्थिक शक्ति, औद्योगिक शक्ति, सिद्धांतवाद या आतंकवाद का उपयोग करेंगे। साथ की राष्ट्रों के बीच विशेष झगड़ों या असहमति का निपटारा करके मानव जाति के कार्यकलापों में आई वर्तमान विराट अव्यवस्था को भी नहीं दूर किया जा सकता। उसके लिए एक प्रामाणिक सार्वभौम ढांचे को अपनाये जाने की आवश्यकता है।

निश्चय ही राष्ट्रीय नेताओं ने इस समस्या के उस सार्वभौम स्वरूप को जो उनके सामने दिन प्रतिदिन अधिक प्रबल रूप से उठने वाली समस्याओं के द्वारा स्वतः स्पष्ट हो जाता है, समझने में कोई कोताही नहीं की है और इसके साथ ही अनेक चिन्तित और प्रबुद्ध लोगों द्वारा किये गये अध्ययनों और समाधानों की संख्या भी निरंतर बढ़ती जा रही है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र के अनेकों अभिकरणों ने भी इस विषय में कार्य किया है जिससे कि इन चुनौतीभरी आवश्यकताओं के विषय में किसी प्रकार की जानकारी के अभाव की सम्भावना न रहे। लेकिन इस दिशा में कुछ करने की इच्छा को ही जैसे काठ मार गया हो। और इसी समस्या का सावधानीपूर्वक परीक्षण और दृढ़ निश्चय के साथ उसका निराकरण होना चाहिए। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इस निष्क्रियता की जड़ है इस धारणा में कि मनुष्य जाति अनिवार्यतः झगड़ालू है। और इसी कारण से एक विश्व व्यवस्था के हित में राष्ट्रीय हितों

को गौण मानने के प्रति अनिच्छा उत्पन्न हुई है और एक संयुक्त विश्व अधिकरण के दूरगामी परिणामों का साहसपूर्वक सामना करने के प्रति अनिच्छा उत्पन्न हुई है। इसका एक कारण इस तथ्य में भी खोजा जा सकता है कि अधिकांश में अज्ञान में डूबे हुए और गुलामी में पड़े हुए जनसमूह एक ऐसी नई व्यवस्था के प्रति अपनी कामना को प्रकट कर पाने में असमर्थ हैं जिसमें वे शांति, सामंजस्य और खुशहाली से सारी मानवता के साथ रह सकें।

विश्व व्यवस्था की ओर बढ़ते कदम

विश्व व्यवस्था की ओर बढ़ते कदम, विशेष रूप से दूसरे विश्व युद्ध के बाद से, आशाजनक संकेत देते हैं। राष्ट्रों के समूहों द्वारा ऐसे संबंधों को औपचारिक रूप देने की प्रवृत्ति जो उन्हें आपसी हितों के मामलों में सहयोग देने योग्य बनाते है, यह संकेत देते हैं कि अन्ततोगत्वा सभी राष्ट्र इस निष्क्रियता पर काबू पा सकते हैं। दक्षिण पूर्वी राष्ट्रों के संगठन, कैरेबियन समुदाय तथा साझाबाजार, केन्द्रीय अमरीकी साझा बाजार, पारस्परिक आर्थिक सहयोग की परिषद, योरोपीय समुदाय, अरब राष्ट्रों का संघ, अफ्रीकी एकता संगठन, अमेरिकन राष्ट्रों का संगठन, दक्षिण प्रशांत संस्था तथा वे सभी संयुक्त प्रयास जो ऐसे संगठनों के द्वारा किये जाते हैं एक विश्व व्यवस्था के लिए मार्ग तैयार करते हैं।

इस धरती की सबसे अधिक जड़ जमा लेने वाली समस्याओं की ओर जो लगातार ज्यादा से ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है वह भी एक दूसरा आशाजनक संकेत है। संयुक्त राष्ट्र की कुछ साफ दिखाई देने वाली कमियों के बावजूद, उस संगठन द्वारा चालीस से भी अधिक अपनाये गये घोषणा पत्रों तथा सिद्धान्तों ने उस स्थिति में भी जबकि कुछ सरकारें उनके प्रति प्रतिबद्धता के विषय में बहुत अधिक उत्साही नहीं हैं, आम लोगों में एक नई उम्र पाने जैसी भावना दी है। मानव अधिकारों की सार्वभौम उद्घोषणा, जातिनाश के अपराध को रोकने और दंडित करने पर समझौता, लिंगभेद, या धार्मिक विश्वास, नस्ल आदि पर आधारित सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने से संबंधित उसी प्रकार के उपाय, बच्चों के अधिकारों की रक्षा, यंत्रणा के शिकार सभी लोगों का बचाव, भूख और कुपोषण को मिटाना, शांति और

मानव कल्याण के लिये वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास का उपयोग – ऐसे सभी उपायों को यदि साहसपूर्वक लागू किया जाये और विस्तार दिया जाये, तो ये उस दिन को और निकट ले आएंगी जब युद्ध की प्रेतछाया अंतर्राष्ट्रीय संबंधों पर अपने आधिपत्य को खो चुकी होगी । इन घोषणाओं और समझौतों में जिन समस्याओं की ओर संकेत किया गया है, उनके महत्व पर बल देने की कोई आवश्यकता नहीं है । फिर भी ऐसी कुछ समस्यायें, विश्व शांति की स्थापना के विषय में तात्कालिक रूप से प्रासंगिक होने के कारण कुछ अतिरिक्त टिप्पणी की मांग करती हैं ।

नस्लवाद

नस्लवाद, जो सभी बुराइयों में सबसे अधिक घातक और रूढ़िबद्ध है, शांति की राह में एक प्रमुख रूकावट है । इसका अब भी व्यवहार में लाया जाना मानवता के गौरव का इतना अपमानजनक उल्लंघन है कि उसको किसी भी बहाने से सहन नहीं किया जा सकता । नस्लवाद अपने शिकार लोगों की असीम आंतरिक संभावनाओं को प्रकट होने से रोकता है, इसको व्यवहार में लाने वाले को भ्रष्ट करता है और मानव प्रगति को अवरुद्ध कर देता है । मानवजाति की एकता की स्वीकृति की, जिसे समुचित वैधानिक उपायों से लागू किया जाये, सार्वभौम रूप से रक्षा होनी चाहिए, यदि इस समस्या पर काबू पाया जाना है ।

धनी और निर्धनों के बीच बेहिसाब असमानता

धनी और निर्धनों के बीच बेहिसाब असमानता महान कष्टों का एक मूलस्रोत है और संसार को अस्थिरता की स्थिति में, वस्तुतः लड़ाई के कगार पर बनाये रखता है । बहुत थोड़े समाज इस स्थिति से प्रभावशालीरूप से निपट पाये हैं । इसका समाधान आध्यात्मिक, नैतिक और व्यावहारिक तरीक़ों की मांग करता है । इस समस्या पर एक नये पहलू से नज़र डाले जाने की आवश्यकता है जिसका अर्थ है ज्ञान के अत्यधिक विस्तृत क्षेत्रों के विशेषज्ञों के साथ ऐसे विचार विमर्श जो आर्थिक बहस और वादों की पेचीदगियों से मुक्त हों और जिसमें उन लोगों की भी पूरी साझेदारी हो जो इन निर्णयों से,

जिन्हें शीघ्र ही किया जाना बहुत आवश्यक है, सीधे रूप में प्रभावित होते हों। यह एक ऐसा मामला है जो न केवल अत्यधिक धनाढ्यता और अत्यधिक ग़रीबी को समाप्त करने की आवश्यकता से जुड़ा हुआ है, बल्कि जिसका संबंध उन आध्यात्मिक सत्यों से भी है जिन के समझ लेने पर एक नये सार्वभौमिक रवैये का जन्म हो सकता है। एक ऐसी प्रवृत्ति को बढ़ावा देना स्वयं इस समाधान का एक प्रमुख हिस्सा है।

अनियंत्रित राष्ट्रवाद

अनियंत्रित राष्ट्रवाद, जिसे एक समझदारीभरी और औचित्यपूर्ण देशभक्ति से अलग समझा जाना चाहिए, एक व्यापक निष्ठा, संपूर्ण मानवता के प्रति प्रेम का रूप ले। यह अत्यन्त आवश्यक है। बहाउल्लाह का कथन है "धरती एक देश है, और मानवजाति इसके नागरिक।" विश्व नागरिकता की धारणा का सीधा संबंध वैज्ञानिक प्रगति और राष्ट्रों की आपसी निर्भरता के कारण पूरे संसार के एक ही पड़ौस के रूप में बदल जाने से है। सारे संसार के लोगों से प्रेम में किसी के अपने देश के प्रति प्रेम को वर्जित नहीं किया गया है। विश्व समाज का एक अंग होने के लाभ को संपूर्ण के लाभ को बढ़ावा देकर और अधिक बढ़ाया जा सकता है। विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे अंतर्राष्ट्रीय क्रियाकलाप जिनसे आपसी स्नेह और विभिन्न देशों के लोगों के बीच एकजुटता की भावना को पोषण मिलता हो, बेहद बढ़ावा देने की जरूरत है।

धार्मिक मतभेद

पूरे इतिहास के दौरान धार्मिक मतभेद अनगिनत युद्धों और संघर्षों के कारण बने रहे हैं, प्रगति के मार्ग में एक प्रमुख बाधा बने रहे हैं और सभी धर्मों के मानने वालों और किसी धर्म को भी न मानने वाले लोगों के लिए भी वह अधिक से अधिक घृणित बन गये हैं। सभी धर्मों के अनुयायियों को अवश्य ही उन आधारभूत प्रश्नों का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए जो यह मतभेद खड़ा करते हैं, और स्पष्ट उत्तरों तक पहुंचने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। कैसे उनके बीच के मतभेद सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप में दूर हों ? आज के धार्मिक नेताओं के सामने जो चुनौती है, उस पर मानवीय

संवेदना की भावना और सत्य की कामना से पूर्ण हृदयों के साथ मानवजाति की दुर्दशा पर उन्हें विचार करना चाहिये और अपने आप से यह प्रश्न पूछना चाहिये कि क्या उन्हें अपने सर्वशक्तिमंत स्रष्टा के सम्मुख विनीत भाव से, पारस्परिक धर्मशास्त्रीय मतभेदों को डुबो नहीं देना चाहिये जो उन्हें मानवीय समझ और शांति की प्रगति के लिए कार्य करने के योग्य बना सके ?

स्त्रियों की भूमिका

स्त्रियों का उद्धार, स्त्रियों और पुरुषों के बीच पूर्ण समानता की उपलब्धि शांति की सबसे महत्वपूर्ण, यद्यपि कम स्वीकृत मूल आवश्यकताओं में से है। ऐसी समानता को अस्वीकार करना संसार की आधी आबादी के विरूद्ध एक अन्याय को जारी रखता है और पुरुषों के बीच ऐसी हानिकारक प्रवृत्तियों और आदतों को बढ़ावा देता है जो परिवार से आगे बढ़कर काम की जगह, राजनीतिक जीवन, और अंततः अंतर्राष्ट्रीय संबंधों तक पहुंचती है। ऐसा कोई भी नैतिक, व्यावहारिक अथवा जैवशास्त्रीय आधार नहीं है जिस पर अधिकारों की यह अस्वीकृति न्यायपूर्ण ठहराई जा सके। मानवीय प्रयास के सभी क्षेत्रों में जब महिलाओं की पूरी साझेदारी का स्वागत किया जाएगा, केवल तभी वह नैतिक और मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार किया जा सकेगा जिसमें से अंतर्राष्ट्रीय शांति का जन्म होगा।

विश्वव्यापी शिक्षा

सब के लिये शिक्षा का लक्ष्य, जिसके लिए पहले से ही प्रत्येक धर्म और राष्ट्र के निष्ठावान लोगों का एक विशाल दल अपनी सेवायें समर्पित कर चुका है, संसार की सरकारों के अधिक से अधिक समर्थन का अधिकारी है। क्योंकि अज्ञान ही अकाट्यरूप से वह प्रमुख कारण है जो लोगों के पतन और ह्रास का और पूर्वाग्रहों के लगातार बने रहने का आधार है। कोई भी राष्ट्र तब तक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता जब तक उसके सभी नागरिकों को शिक्षा नहीं प्रदान की जाती। संसाधनों का अभाव अनेक राष्ट्रों की क्षमता को सीमित कर देता है और उन्हें वरीयताओं का एक क्रम निश्चित करने के लिए विवश करता है। इस संबंध में निर्णय लेने का अधिकार जिन संस्थाओं को है, वे

यदि महिलाओं और लड़कियों की शिक्षा को पहली वरीयता देने के संबंध में विचार करें, तो बहुत अच्छा होगा। क्योंकि, शिक्षित माताओं के माध्यम से ही ज्ञान के लाभों का प्रभावशाली रूप से और तेजी के साथ पूरे समाज में प्रसार किया जा सकता है। समय की आवश्यकताओं का लिहाज़ रखते हुए विश्व नागरिकता की मान्यता को प्रत्येक बालक की सामान्य शिक्षा के एक भाग के रूप में पढ़ाये जाने के संबंध में भी विचार होना चाहिए।

एक अंतर्राष्ट्रीय सहायक भाषा

विभिन्न लोगों के बीच संचार का अभाव भी विश्वशांति के प्रयासों को गंभीर हानि पहुंचाता है। एक अंतर्राष्ट्रीय सहायक भाषा को अपनाने से इन समस्याओं को सुलझाने में बड़ी हद तक सफलता मिलेगी और इस विषय पर तत्काल ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

सामाजिक समस्याओं के आध्यात्मिक समाधान

इन सभी मामलों में दो बातों पर विशेष बल दिया जाना आवश्यक है। पहली यह कि युद्ध की समाप्ति महज संधियों और समझौतों पर हस्ताक्षर करने की ही बात नहीं है, यह एक बहुत ही जटिल काम है जिसमें प्रतिबद्धता के एक नये स्तर की आवश्यकता है, आमतौर पर शांति की प्राप्ति के साथ नहीं जोड़ा जाता। दूसरी बात यह है कि शांति से संबंधित समस्याओं का सामना विशुद्ध व्यावहारिकता से बिल्कुल अलग चीज हो। क्योंकि मूलरूप में, शांति एक आंतरिक मनःस्थिति से उपजती है जिसका आधार होती है आध्यात्मिक, नैतिक वृत्ति और प्रमुखतः इस वृत्ति को जगाने पर ही चिरस्थायी समाधानों की संभावना हो सकती है।

कुछ ऐसे आध्यात्मिक सिद्धान्त हैं, जिन्हें कुछ लोग मानवीय मूल्य कहते हैं। आध्यात्मिक सिद्धान्त का सारभूत गुण यह है कि यह न केवल एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जो मानव प्रकृति के अंतर्निहित स्वभाव के साथ सामंजस्य रखता है, बल्कि यह एक ऐसी वृत्ति की प्रेरणा देता है – एक गतिशीलता की, एक इच्छाशक्ति की, एक आकांक्षा की – जो व्यावहारिक

उपायों की खोज और उन्हें लागू करने के रास्ते को सुगम बनाती है। सरकारों के अध्यक्ष और सत्ताधीन सभी लोग, यदि वे पहले इस समस्या के मूल में निहित सिद्धान्तों को पहचान लेंगे और फिर उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करेंगे, तो इन समस्याओं को सुलझाने में उनके प्रयासों को अच्छी सहायता मिलेगी।

* * *

एक नई विश्व व्यवस्था के आधार

जिस आधारभूत प्रश्न को सुलझाना है, वह यह है कि आज की दुनिया, जिसमें संघर्ष की बद्धमूल रूढ़ियां बरकरार हैं, क्या एक ऐसी दुनिया के रूप में बदल सकती है जिसमें सामंजस्य और सहयोग का बोलबाला हो ।

मानवजाति की एकता

विश्वव्यवस्था केवल मानवजाति की एकता की अडिग चेतना के आधार पर खड़ी की जा सकती है । यह एक ऐसा आध्यात्मिक सत्य है जिसकी पुष्टि सभी मानवीय विज्ञान करते हैं । मानवशास्त्र, शरीर विज्ञान, मनोविज्ञान, आदि स्वीकार करते हैं कि मानव की एक ही नस्ल है, चाहे वह जीवन के गौणतर पहलुओं में अनंत विविधता रखती हो । इस सत्य की स्वीकृति के लिए सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों के परित्याग की आवश्यकता है – नस्ल, वर्ग, रंग, धर्म, राष्ट्र, लिंग तथा भौतिक सभ्यता के स्तर से संबंधित सभी पूर्वाग्रहों के परित्याग की आवश्यकता है, उस सभी कुछ के परित्याग की आवश्यकता है जो लोगों द्वारा स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझे जाने का कारण बनते हैं ।

मानवजाति की एकता की स्वीकृति इस संसार को एक देश के रूप मे, समस्त मानवता के घर के रूप में पुनर्गठित करने और प्रशासित करने की पहली आधारभूत आवश्यकता है । इस आध्यात्मिक सिद्धान्त की सार्वभौमिक स्वीकृति विश्व शांति स्थापित करने के किसी भी सफल प्रयास के लिये अत्यन्त अनिवार्य है । अतः इसकी सार्वभौम उद्घोषणा की जानी चाहिए । इसे स्कूलों में पढ़ाया जाना चाहिए और समाज के ढांचे में, उस जीवंत परिवर्तन के लिए जो इसका निहितार्थ है, प्रत्येक राष्ट्र में इस पर निरंतर बल दिया जाना चाहिए ।

बहाई दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य जाति की एकता की स्वीकृति यह मांग करती है कि "संपूर्ण सभ्य संसार का पुनर्निर्माण व असैन्यीकरण हो।" इससे कम कुछ नहीं – एक ऐसा संसार जो जीवन के सभी सारभूत पक्षों में, अपनी राजनीतिक प्रणाली में, अपनी आध्यात्मिक आकांक्षाओं में, अपने व्यापार और अर्थव्यवस्था में, अपनी लिपि और भाषा में जीवंत रूप से एकता के सूत्र में बंधा हुआ हो, और फिर भी इस संघ की सभी संघभूत इकाइयों की राष्ट्रीय विविधताओं की विशिष्टता अनंत हो।

एक विश्व समुदाय

इस मूल सिद्धान्त के प्रभावों को स्पष्ट करते हुए बहाई धर्म के संरक्षक, शोग़ी एफेंदी ने १९३१ में विचार व्यक्त किये थे कि : "समाज के वर्तमान आधारों को तोड़ने की बात तो दूर, यह (बहाई धर्म) इसके आधार को व्यापक बनाने का और इसकी संस्थाओं को इस रूप में पुर्नःनिर्मित करने का इच्छुक है जो इस निरंतर बदलती हुई दुनिया की आवश्यकताओं के अनुकूल हों। इसका विरोध किसी भी प्रकार की सही उद्देश्यों वाली संस्था के साथ नहीं हो सकता और न ही यह अनिवार्य वफादारी को ओछा दिखलाना चाहता है, इसका उद्देश्य न तो मानव हृदयों में जलने वाली प्रबुद्ध और समझदारी भरी देशभक्ति की दीपशिखाओं को दबाना है, न ही राष्ट्रीय स्वायत्तता की उस प्रणाली को समाप्त करना है जो अत्यधिक आवश्यक है, इसका उद्देश्य सीमा से अधिक केंद्रीकरण से बचना है। यह नस्ली मूलों, जलवायु, इतिहास, भाषा और परंपरा, विचार और स्वभाव, तथा स्वभाव की उन विविधताओं को भी दबाना नहीं चाहता जो संसार के राष्ट्रों और लोगों को अलग करते हैं। इसकी पुकार है कि अब तक मानवजाति में जिन निष्ठाओं और आकांक्षाओं को अनुप्राणित किया गया है उससे कहीं अधिक व्यापक और विशालतर आकांक्षायें हमारी हों। इसका आग्रह है कि एकता के सूत्र में बंधे हुए संसार के अनिवार्य दावों के सम्मुख राष्ट्रीय आवेगों और हितों को गौण माना जाये। एक ओर तो यह अत्यधिक केन्द्रीकरण का खंडन करता है और दूसरी ओर एकरूपता लाने के सभी प्रयासों को स्वीकार करता है। इसका मूल स्वर है विविधता में एकता।"

ऐसे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय, राजनैतिक रवैयों का कई कारणों से व्यवस्थित किया जाना आवश्यक है, जो इस समय स्पष्ट रूप से परिभाषित कानूनों या राष्ट्रों के बीच संबंधों को नियंत्रित करने वाले स्वीकृत सार्वभौम सिद्धान्तों के अभाव के कारण अराजकता के सीमान्त पर स्थित हैं। लीग ऑफ नेशन्स, संयुक्त राष्ट्र तथा अनेक वे संगठन या समझौते जिनको इन दोनों संस्थाओं ने जन्म दिया है, अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों के कुछ नकारात्मक प्रभावों को क्षीण करने में सहायक अवश्य हुए हैं लेकिन उन्होंने स्वयं को युद्ध रोकने में असमर्थ प्रमाणित किया है। वास्तव में दूसरे विश्व युद्ध के समाप्त होने के बाद से बीसियों लड़ाईयां हो चुकी हैं और बहुत सी इस समय भी चल रही हैं।

इस समस्या के प्रमुख पहलू उन्नीसवीं सदी में भी सामने आ चुके थे। जब बहाउल्लाह ने पहले पहल विश्वशांति की स्थापना के अपने प्रस्तावों को सामने रखा था, तब विश्व के शासकों को संबोधित एक वक्तव्य में उन्होंने सामूहिक सुरक्षा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। शोग़ी अफ़ेन्दी ने उनके आशय पर टिप्पणी करते हुए लिखा है : "और किस आशय की ओर ये गुरूत्तर शब्द संकेत करते हैं, यदि उन्होंने उस अबाधित राष्ट्रीय प्रभुसत्ता की अनिवार्य कटौती की ओर संकेत नहीं किया है जो संसार के सभी राष्ट्रों के भावी राष्ट्रसंघ के निर्माण के लिए एक अनिवार्य शर्त है ! यह जरूरी है कि एक विश्व की सर्वोपरि सरकार के किसी रूप का विकास अवश्य किया जाये जिसके पक्ष में संसार के सभी राष्ट्र स्वेच्छा से युद्ध करने, कर लगाने के कुछ अधिकारों और शस्त्रास्त्र रखने के सभी अधिकारों का स्वेच्छा से परित्याग कर चुके होंगे, सिवा अपने अपने अधिकार क्षेत्रों में आंतरिक व्यवस्था बनाये रखने के उद्देश्य से शस्त्र रखने के अधिकारों के। ऐसे एक राज्य की परिधि में, एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय कार्यकारिणी भी सम्मिलित होगी जो उस राष्ट्रसंघ के प्रत्येक झगड़ालू सदस्य पर सर्वोपरि और चुनौती न दी जा सकने वाले अधिकार को लागू करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम हो, एक विश्व संसद, जिसके सदस्य सम्बद्ध राष्ट्रों के लोगों द्वारा चुने जायेंगे और जिसके चुनाव की पुष्टि वहां की सरकारों द्वारा की जायेगी, और इसके साथ ही एक सर्वोपरि

न्यायाधिकरण भी होगा जिसका निर्णय ऐसे मामलों में भी बाध्यकारी प्रभाव रखता होगा जिन मामलों में संबंधित पक्ष अपने मामले को विचारार्थ उसके समक्ष प्रस्तुत करने के लिए स्वेच्छापूर्वक सहमत नहीं भी हुए होंगे।

"एक ऐसा विश्व समाज जिसमें सारी आर्थिक दीवारें स्थायी रूप से ढहाई जा चुकी होंगी और जिसमें पूंजी और श्रम की पारस्परिक निर्भरता निश्चित रूप से स्वीकार की जा चुकी होंगी, जिसमें धार्मिक धर्मान्धता और झगड़ों का शोरगुल सदा के लिये खामोश किया जा चुका होगा, जिसमें नस्ली दुश्मनी की ज्वाला को अंतिम रूप से बुझाया जा चुका होगा, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय कानून की एक संहिता – संसार के संघरूप में संगठित प्रतिनिधियों के सुविचारित निर्णय के निष्कर्ष लागू किये जा सकेंगे – जिसमें दंड के रूप में (पाबंदियों के रूप में) संघीभूत इकाइयों की सम्मिलित शक्तियों के तत्काल दौर दमनकारी हस्तक्षेप का प्रयोग हो सकेगा, और अंत में एक ऐसा विश्व समाज जिसमें एक सनकी और आक्रामक राष्ट्रवाद की उग्रता को विश्व नागरिकता की एक स्थायी चेतना के रूप में परिवर्तित किया जा चुका होगा – निश्चय ही बहाउल्लाह द्वारा दी गई व्यवस्था की व्यापक रूपरेखा ऐसी ही प्रतीत होती है, एक ऐसी व्यवस्था जो धीरे धीरे वयस्क होते हुए युग के श्रेष्ठतम फल के रूप में मानी जाएगी।

एक विश्व सभा

इन दूरगामी उपायों के क्रियान्वयन की ओर बहाउल्लाह ने संकेत किया था, "वह समय अवश्य आयेगा जब एक सर्वव्यापी अधिकारों वाली मानव सभा की आवश्यकता को सार्वभौम रूप से अनुभव किया जायेगा। आवश्यक है कि इस दुनिया के शासक और राजा लोग इसमें भाग लें, और इसके कार्यकलापों में भाग लेते हुए, अवश्य ही ऐसे तरीकों और उपायों पर विचार करें जो मनुष्यों के बीच संसार की महानतम शांति की नींव रखे।

साहस, दृढ़ संकल्प, विशुद्ध उद्देश्य, एक देश के लोगों का दूसरे देश के लोगों के प्रति निःस्वार्थ प्रेम – वे सभी आध्यात्मिक और नैतिक गुण जिनकी शांति की ओर बढ़ने वाले इस युगांतरकारी कदम के लिए आवश्यकता है, मुख्य रूप से एक ही तथ्य की ओर इशारा करते हैं – काम करने के दृढ़ संकल्प की ओर। और इस आवश्यक संकल्प शक्ति को जगाने के लिए जरूरत है

कि मनुष्य के मूल यथार्थ पर अर्थात् उसके 'विचार' पर तत्काल ध्यान दिया जाये। इस बात को समझने का अर्थ है स्पष्ट आवेग रहित और सौहार्दपूर्ण परामर्श के द्वारा और इस प्रक्रिया के परिणामों पर आचरण करने की सामाजिक आवश्यकता को यथार्थ रूप देना। बहाउल्लाह ने मानव क्रियाकलापों को व्यवस्थित करने के लिये परामर्श की अनिवार्यता और गुणों पर ध्यान दिलाया है। उन्होंने कहा है, "परामर्श अधिक व्यापक जागरूकता प्रदान करता है और मात्र अनुमान को निश्चितता में परिवर्तित करता है। यह एक ऐसी जगमगाती ज्योति है जो, इस अंधेरी दुनिया में हमारा पथप्रदर्शन करती है। प्रत्येक कार्य के लिए एक पूर्णता और वयस्कता की स्थिति है और सदा रहेगी। बोध की शक्ति की परिपक्वता परामर्श के द्वारा मूर्त्त होती है"। उन्होंने जिस शांति का प्रस्ताव किया है उसकी प्राप्ति के लिए मात्र परामर्श करने का प्रयास ही इस संसार के लोगों के बीच एक ऐसी मंगलमय भावना को उन्मुक्त कर सकता है कि कोई भी शक्ति उसके अंतिम, विजयपूर्ण परिणाम को रोक नहीं सकती।

इस विश्व सभा के कार्यकलापों के संबंध में, बहाउल्लाह के सुपुत्र और उनकी शिक्षाओं के अधिकृत व्याख्याता, अब्दुलबहा ने यह अंतर्दृष्टि संपन्न बातें सामने रखीं हैं "यह आवश्यक है कि वे शांति के उद्देश्य को सामान्य परामर्श का विषय बनायें और अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक साधन के द्वारा संसार के राष्ट्रों का एक संगठन (संघ) स्थापित करने का प्रयास करें। यह आवश्यक है कि वे एक बाध्यकारी संधि करें और एक ऐसे समझौते की स्थापना करें जिसके प्रावधान समुचित, अनुलंघनीय और सुनिश्चित होंगे। यह आवश्यक है कि ये समस्त विश्व के समक्ष इसकी उद्घोषणा करें और इसके लिए समस्त मानवजाति की स्वीकृति प्राप्त करें। यह सर्वोपरि और उदात्त दायित्व जो संसार की शांति और कल्याण का मूलस्रोत है – इस धरती के समस्त निवासियों के द्वारा एक पवित्र दायित्व माना जाये। इस परम महान समझौते के स्थायित्व और स्थिरता के लिये मानवता की सभी शक्तियों को गतिशील किया जाये। इस सर्वव्यापी समझौते में प्रत्येक राष्ट्र की सीमाओं और सरहदों को स्पष्ट रूप से निश्चित किया जाये। एक दूसरे के साथ सरकारों

के संबंधों के आधारभूत सिद्धान्तों को निश्चित किया जाए और सभी अंतर्राष्ट्रीय समझौतों और दायित्वों को सुनिश्चित रूप दिया जाए। उसी प्रकार से प्रत्येक सरकार के शस्त्रास्त्रों को कड़ाई के साथ सीमित किया जाये, क्योंकि यदि युद्ध के लिए तैयारियों और किसी राष्ट्र की सैनिक शक्तियों को बढ़ने दिया जायेगा तो उससे दूसरों का संदेह बढ़ेगा। इस पवित्र समझौते के आधारभूत सिद्धान्तों को इस प्रकार से निश्चित किया जाये कि यदि कोई सरकार बाद में इसके किसी भी प्रावधान को भंग करे, तो इस संसार की सारी सरकारें उसे पूरी तरह अधीनस्थ करने के लिए उठ खड़ी हों, बल्कि मानवजाति को एक समग्र इकाई के रूप में अपने अधिकार में उपलब्ध सभी शक्तियों का उपयोग करते हुए उस सरकार को नष्ट कर देना चाहिए। यदि सभी उपायों में से इस महानतम उपाय को इस विश्व के रोगी शरीर पर प्रयुक्त किया जाये तो यह निश्चय ही अपनी बुराइयों से मुक्त हो जाएगा और चिरंतन रूप से सुरक्षित और स्थायी रहेगा।

इस प्रबल सम्मेलन के आयोजन में पहले ही बहुत विलम्ब हो चुका है।

हम अपने हृदयों की प्रखरतम भावना के साथ सभी राष्ट्रों के नेताओं से अपील करते हैं कि इस उपयुक्त क्षण का लाभ उठाते हुए, ऐसे उपाय करें जिनसे कि यह विश्व सभा एक वास्तविकता बन सके। इतिहास की सभी शक्तियां मानवजाति को इस कार्य के लिए बाध्य कर रही हैं और यह सदा सदा के लिए उस चिर अपेक्षित वयस्कता के उदय का सूचक होगा।

क्या संयुक्त राष्ट्र अपने सभी सदस्यों के पूर्ण समर्थन के साथ इस सर्वोपरि घटना के उच्च उद्देश्य को पूरा करने के लिए नहीं उठ खड़ा होगा?

सभी स्थानों के महिलाओं और पुरुषों, युवकों और बालकों को हमारा आह्वान है कि सभी देशों के लोगों के लिए इस आवश्यक कदम के शाश्वत महत्व को स्वीकार करें और अपने स्वर स्वेच्छापूर्वक स्वीकृति में उठायें। निश्चय ही इस पीढ़ी को ही इस धरती के सामाजिक जीवन के विकास के इस नये चरण को शुभारंभ करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

एक संयुक्त विश्व की दृष्टि

विश्व का एक सूत्र में गठन

हम यह अनुभव करते हैं कि इस आशावाद का मूलस्रोत एक ऐसी दृष्टि है जो युद्धों की समाप्ति और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की संस्थाओं के निर्माण की स्थिति से आगे झांकती है। राष्ट्रों के बीच स्थायी शांति एक आवश्यक चरण है, लेकिन बहाउल्लाह बलपूर्वक कहते हैं कि यह मानवजाति के सामाजिक विकास का अंतिम लक्ष्य नहीं है। आणविक महाविनाश के भय से विवश होकर अपनाये गये शस्त्र त्याग से भी परे, एक दूसरे पर संदेह करने वाले प्रतिद्वन्दी राष्ट्रों द्वारा अनिच्छापूर्वक स्थापित की गई राजनीतिक शांति से परे, सुरक्षा और सह अस्तित्व की व्यावहारिक व्यवस्थाओं से परे, ये उपाय सहयोग के जिन प्रयोगात्मक प्रयासों को संभव बनायेंगे, उनसे भी परे है वह सर्वोपरि लक्ष्य – एक सार्वभौम परिवार के रूप में संसार भर के राष्ट्रों और जातियों का एक सूत्र में गठन।

एकता का अभाव वह खतरा है जिसे इस धरती के राष्ट्र और लोग और देर तक सहन नहीं कर सकते, इसके परिणाम इतने भयंकर हैं कि उनके विषय में सोचा भी नहीं जा सकता, और इतने प्रत्यक्ष हैं कि उनका वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। "बहाउल्लाह ने एक शताब्दी से भी पहले लिखा था, – "मानवजाति का कल्याण, उसकी शांति और सुरक्षा, तब तक प्राप्त नहीं की जा सकती जब तक कि उसकी एकता सुदृढ़ रूप से स्थापित न हो जाये"। और यह उद्‌गार व्यक्त करते हुए कि "मानवजाति कराह रही है, एकता की मंजिल तक पहुंचने का मार्गदर्शन पाने को और अपनी युगों से चलती आ रही शहादत को समाप्त करने के लिए छटपटा रही है" शोग़ी अफ़ेन्दी ने इससे आगे कहा है कि: "संपूर्ण मानवजाति की एकता उस स्थिति का संकेत है जहां मानव समाज अब पहुंच रहा है। परिवार की,

कबीले की, नगर राज्य की ओर राष्ट्र की एकता का उत्तरोत्तर प्रयास किया गया और वह पूरी तरह से स्थापित हो चुकी है। विश्व एकता वह लक्ष्य है जिसकी ओर संत्रस्त मानवता अब प्रयासरत है। राष्ट्र निर्माण की स्थिति अब समाप्त हो चुकी है। राज्य की प्रभुसत्ता में निहित अराजकता अब चरम परिणति पर पहुंच रही है। वयस्कता की ओर विकसित होती हुई इस दुनिया को यह दकियानूसी विचार छोड़ देना चाहिए और मानव संबंधों की एकता और समग्रता को स्वीकार करना चाहिए और सदा के लिए उस प्रणाली को स्थापित कर देना चाहिए जो जीवन के इस आधारभूत सिद्धान्त को सर्वोत्तम रूप में मूर्त्त कर सके।"

परिवर्तन की सभी समकालीन शक्तियां इस दृष्टिकोण को प्रामाणिकता प्रदान करती हैं। वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय आंदोलनों और घटनाओं में इस विश्वशांति की ओर संकेत करने वाले इन प्रमाणों को हम देख सकते हैं। स्त्री पुरुषों की एक विशाल सेना, जिसमें वस्तुतः प्रत्येक संस्कृति, नस्ल, और राष्ट्र के लोग हैं और जो संयुक्त राष्ट्र की अनेकानेक संस्थाओं में कार्य करते हैं, एक ऐसी सार्वभौम "नागरिक सेवा" का ही रूप हैं जिसकी प्रभावशाली उपलब्धियां यह संकेत देती हैं कि निरुत्साहित करने वाली परिस्थितियों में भी सहयोग और सहकार को बहुत बड़ी सीमा तक उपलब्ध किया जा सकता है। एक आध्यात्मिक वसंत के समान ही एकता की आकांक्षा अपने आपको अनगिनत अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के रूप में अभिव्यक्त करने के लिए संघर्षरत है। ये सम्मेलन अत्यन्त व्यापक और विविध विषयों और विधाओं से संबंधित लोगों को एक स्थान पर इकट्ठा करते हैं। निश्चय ही यह सार्वभौमता की ओर गतिशील प्रवृति का एक वास्तविक स्रोत है जिसके माध्यम से ऐतिहासिक रूप से एक दूसरे के विरोधी धर्म और पंथ भी एक दूसरे की ओर खिंचते दिखाई देते हैं। युद्ध और स्वार्थपरता की उस विरोधी प्रवृत्ति के साथ-साथ एकता की प्रवृत्ति इस विश्व एकता की ओर गतिशीलता २०वीं सदी के अंतिम वर्षों के दौरान इस धरती के जीवन की प्रमुख और व्यापक विशेषताओं में से एक है।

बहाई मॉडेल

बहाई समुदाय का अनुभव इस बढ़ती हुई एकता के एक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। यह तीस से चालीस लाख लोगों का एक समुदाय है जो अनेकों राष्ट्रों, संस्कृतियों, वर्गों और धर्मों से संबंधित हैं और जो ऐसी बहुमुखी क्रियाकलापों में लगे हुए हैं जिनसे अनेकों देशों की जनता की आध्यात्मिक, सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। यह एक सूत्र में बंधा हुआ जीवन्त समुदाय है जो मानव परिवार की विविधता का प्रतीक है और अपने क्रियाकलापों को सामान्य रूप से स्वीकृत परामर्श के आधार पर अपनाये गये सिद्धान्तों की एक प्रणाली के द्वारा संचालित करता है और मानव इतिहास में दिव्य पथप्रदर्शन के जो भी महान प्रेरणास्रोत हुए हैं उनका समान रूप से आदर करता है। इसका अस्तित्व इसके प्रवर्त्तक की दृष्टि की व्यावहारिकता का एक और प्रमाण है। यह एक और साक्ष्य है कि मानवता एक विश्वव्यापी समाज के रूप में जीवन बिता सकती है और इसकी वयस्कता-प्राप्ति के मार्ग में जो भी चुनौतियां आयें उनका सफलतापूर्वक सामना कर सकती है। यदि बहाई अनुभव मानवजाति की एकता को सुदृढ़ करने में किसी भी मात्रा में योगदान दे सकता हो, तो हम इसे अध्ययन के एक मॉडेल के रूप में प्रस्तुत करने में प्रसन्नता का अनुभव करेंगे।

इस समय सारे विश्व के सम्मुख जो चुनौतीपूर्ण दायित्व है, जब उसकी सर्वोपरि महत्ता पर हम विचार करते हैं, तो हम उस दिव्य सृष्टा की विराट भव्यता के सामने विनम्रता के सर झुका लेते हैं जिसने अपने अनंत प्रेम के कारण सारी मानवता को एक भी तत्व से उत्पन्न किया है, मनुष्य को रत्न जैसे यथार्थ की उदात्तता दी है, इसे प्रज्ञा, उच्चता और अमरता से सम्मानित किया है, और मानव को "उस प्रभु को जानने और उससे प्रेम करने की क्षमता" प्रदान की है, जो अपने आप में अद्वितीय है। यह एक ऐसी क्षमता है जिसे समस्त सृष्टि के उद्देश्य के मूल में स्थित सृजनात्मक प्रेरणा कहा जा सकता है।"

हमारा यह सुदृढ़ विश्वास है कि मानव की सृष्टि "एक निरंतर प्रगतिशील सभ्यता को आगे बढ़ाने के लिए हुई है", कि जंगल के पशुओं की तरह व्यवहार करना मनुष्य के लिए अशोभनीय है, "कि मनुष्य के लिये तो

विश्वसनीयता, सहनशीलता, दया, करुणा, स्नेहमय सौहार्द जैसे सदगुण ही शोभा देते हैं। हम पुनः इस विश्वास की पुष्टि करते हैं कि मानव के पद में अंतर्निहित सामर्थ्य, इस धरती पर उसकी नियति की पूर्णता, उसके यथार्थ की स्वाभाविक श्रेष्ठता, परमेश्वर के इस प्रतिश्रुत दिवस में अवश्य ही प्रकट होने चाहिएं" हमारी यह अडिग आस्था है कि एकता और शांति वे लक्ष्य हैं जो प्राप्त किये जा सकते हैं और जिसके लिये समस्त मानवता प्रयत्नशील है।

इन पंक्तियों के द्वारा बहाइयों की आशा भरी वाणी सुनी जा सकती है, बावजूद उस उत्पीड़न के जो अभी भी इस धर्म की जन्मभूमि में उन्हें दिया जा रहा है। अडिग आशा के उनके इस उदाहरण के द्वारा वे अपने इस विश्वास के साक्षी हैं कि शांति का युगों पुराना यह स्वप्न अब शीघ्र ही साकार होने वाला है। बहाउल्लाह द्वारा प्रकट किये गये उस धर्म के परिवर्तनकारी प्रभाव के कारण, ईश्वरीय सत्ता से संपन्न होने के कारण यह दिव्य शक्ति से अनुप्राणित है। इस प्रकार हम न केवल शब्दों के द्वारा आप तक एक विराट दृष्टि को संप्रेषित कर रहे हैं अपितु हम कर्म में आस्था तथा त्याग की शक्ति का भी आह्वान करते हैं। हम अपने सहधर्मियों की शांति और एकता की आतुर पुकार को सम्प्रेषित करते हैं। हम उन सब के साथ हैं जो आक्रमण के शिकार हैं, हम उन सब के साथ हैं जो संघर्ष और विवाद की समाप्ति की इच्छा रखते हैं, हम उन सब के साथ हैं जो शांति के सिद्धान्तों में और एक विश्व व्यवस्था में निष्ठा रखते हैं क्योंकि इनसे उन उच्च आदर्शों को बढ़ावा मिलता है, जिनके लिए सर्वप्रिय सृष्टा ने मानवजाति को अस्तित्व दिया था।

अपनी तीव्र आशा और अपने गहन विश्वास को आप तक पहुंचाने की उत्कट कामना के साथ यहां हम बहाउल्लाह के बलशाली वचन को उद्धृत करते हैं : "ये निरर्थक विवाद, ये विनाशकारी युद्ध समाप्त हो जायेंगे और परम महान शांति आयेगी।"

— विश्व न्याय मंदिर